Volume-1, No.2 Aug.-2014, pp.117-119

प्राचीन भारत में मानवाधिकार

श्री मुकेश चन्द्र श्रीवास्तव, असिस्टेन्ट प्रोफेसर
गायत्री विद्यापीठ पी.जी. कालेज, रिसिया–बहराइच उत्तर–प्रदेश भारत।

प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारत में मानवाधिकार की चर्चा की गई है। प्राचीन भारत में मानव हित सर्वोपरि था। राज्य प्रजा के हित के लिए सचेत था। राजा का कार्य प्रजा के हितों को संरक्षण प्रदान करना था। वर्तमान समय में मानवाधिकार की जो चर्चा हो रही है, उससे कहीं अधिक विकसित प्राचीन भारत में था। यहाँ तक कि न्याय में भी इसकी परिणति देखी जा सकती है।)

प्राचीन भारत का इतिहास भारत के स्वर्णिम युग को प्रस्तुत करता है। वैदिक काल से लेकर हर्ष के शासनकाल में भी प्रजा हित एवं उनका संरक्षण देखा जा सकता है। न्याय परंपरा में भी कहीं दोषी छूट न जायं और बिना अपराध किये हुए व्यक्ति को कहीं दण्ड न मिल जाय, में इस बात को दृष्टिगत रखा जाता था। शायद यहीं कारण था, कि न्याय व्यवस्था 8 चरणों से होकर गुजरती थी। मिताक्षरा में ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा का कार्य प्रजा का रक्षण है, यह कर्तव्य बिना अपराधी की दण्ड दिए पूरा नहीं हो सकता है। अतः राजा को न्याय–व्यवहार करना चाहिए। उसमें केवल अपराधी को ही दण्ड देना चाहिए। 'राजा' शब्द 'रज्ज' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है कि राजा वही है जो प्रजा का रंजन करे अर्थात प्रजा को सुख प्रदान करे। जो राजा प्रजा को संरक्षण न प्रदान करे उसे प्रजा को उखाड़ फेंकना चाहिए। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि ब्राह्मण लोग अत्याचारी राजा को हटाकर मार डालें तो इस कर्म से पाप नहीं लगता। प्राचीन भारत में ऐसे राजाओं का वर्णन मिलता है कि अपने अत्याचारी स्वभाव के कारण मार डाले गये। राजा वेन को ब्राह्मणों ने मार डाला क्योंकि वह देवद्रोही था। अपने लिए यज्ञ कराना चाहता था और अधर्म पालक था। यही बात महाभारत के अनुशासन पर्व में में कही गई है।

राजा का सबसे प्रमुखतम कार्य प्रजा का रक्षण। सातों राजशास्त्र प्रणेंताओं ने राजा के लिए प्रजा–रक्षण सबसे बड़ा धर्म माना है। यही बात मन एवं कालिदास ने भी कही है। प्रजा–रक्षण का तात्पर्य– चोर, डाकुओं, बाहरी तथा भीतरी आक्रमण तथा प्राण एवं सम्पत्ति से प्रजा की रक्षा करना है। गौतम का कहना है कि राजा का सबसे विशिष्टतम कार्य है– समस्त प्राणियों की रक्षा करना, न्यायोचित दण्ड देना, शस्त्र विहित नियमों के अन्तर्गत वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना तथा पथभ्रष्ट लोगों को सन्मार्ग दिखाना। जिसमें मानवहित सर्वोपरि था। पी0वी0 काणें ने भी लिखा है कि राज्य का उद्देश्य राष्ट्रीय समर्थताओं का विकास, राष्ट्रीय जीवन का परिमार्जन एवं अन्त में उसकी पूर्णता, किन्तु नैतिक एवं राजनैतिक रूप से मानव की नियति से विरोध नहीं।

प्राचीन भारत की वैदिक कालीन जन समितियां मानव अधिकारों की रक्षा के लिए तत्पर थी, चूँकि वैदिक कालीन समाज कबाइली समाज था, जिसमें परिवार का मुखिया ही सर्वश्रेष्ठ था, उसका आदेश परिवार के लोगों को मानना अनिवार्य था। इसीलिए उसे 'कुलक' अर्थात कुल का प्रधान कहा गया। ऐसी स्थिति में आज भी जनजातियों में देखने को मिलती है। किन्तु धीरे–धीरे जब समाज गतिशील होता गया। सभा, समिति, विदथ एवं परिषद जैसी संस्थाएं बनी और समाज के हित एवं स्थायित्व पर चर्चा होने लगी। ये संस्थाएं न केवल समाज के हित की रक्षक थी, अपितु समाज निर्माण में महती भूमिका अदा करती थी। ये लोकतान्त्रिक/जनतान्त्रिक भारत के निर्माण की प्रथम कड़ी थे।

प्राचीन भारत में गणतंत्रीय शासन प्रणाली वाले राज्यों का वर्णन मिलता है। गणतंत्रों में जनसमितियों के माध्यम से मानवाधिकारों की रक्षा होती थी। ये समितियॉ न केवल राजनैतिक कार्य व्यवहार को वहन करने वाली मात्र संस्थाएं थी बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती थी। ये संस्थाएं राजा के कार्यों पर अंकुश लगाती थी। 'विदथ' आर्यों की सबसे पुरानी संस्था थी। 'विद्' धातु से बना है 'विदथ'। जिसका तात्पर्य सम्भवतः विद्वानों की सभा है। के0पी0 जायसवाल ने इसे सबसे पहली संस्था मानी है, जिससे सभा, समिति एवं सेना की उत्पत्ति हुई है। डॉ0 आर.सी. शर्मा ने इसे आर्यों की पुरानी संस्था मानी है जिसमें स्त्री एवं पुरूष सम्मिलित होकर सभी प्रकार के यज्ञादि सम्पन्न करते थे। ऋग्वेद ने विदथ शब्द का वर्णन 22 बार मिलता है।

सभा का वर्णन ऋग्वेद में 8 बार हुआ है। सम्भवतः यह सार्वजनिक संस्था थी जिसमें चुने हुए लोग समिति के अन्दर कार्य करते थे। यद्यपि सभा में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था। महाभारत के द्रौपदी काण्ड में इसका वर्णन मिलता है। कालान्तर में यह राजा की परामर्शदात्री संस्था हो गई।

समिति जब साधारण अथवा विशः की राष्ट्रीय सभा थी। उसमें सभी लोग उपस्थित रहते थे। उनका कार्य राजा

चुनना था। अल्तेकर का विचार है कि यह राजनीतिक संस्था थी। इसका कार्य केन्द्रीय शासन की व्यवस्थापिका सभा के समरूप था।

परिषद पूर्णतया जनता की संस्था थी। प्राचीन भारत में प्रत्येक शिक्षा संबंधी व्यवस्थापिका, जो विद्वानों एवं धार्मिक लोगों की विद्या सभा थी, परिषद कहलाती थी। इस प्रकार प्राचीन वैदिक युगीन संस्थाएं लोगों के हितो के लिए प्रसिद्ध थी। साथ ही न्याय–व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। ऋग्वेद की एक परवर्ती ऋचा के आधार पर सभी को एक ऐसी संस्था के रूप में दिखाने की कोशिश की गई है, जो अभियोग लगाकर लोगों के कलंक मिटाती थी। इसी तरह से 'सभा एवं समिति' को प्रजापति की दो पुत्रियॉ कहा गया है। राजा सभा के परामर्श को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझता था। इसके सदस्यों के बिना काम नहीं चल सकता था। समिति में महिलाओं को जाना कम मिलता था, किन्तु सभा में स्त्रियों का जाना स्पष्ट है।

मानवधिकारों की चर्चा स्मृतियों एवं सूत्रों में 'व्यवहार' के अन्तर्गत देखा जा सकता हैं व्यक्तियों एवं व्यक्तियों के बीच झगड़े का निवारण न्याय–व्यवहार के द्वारा किया जा सकता था। इसके कई अर्थ है–

(1) लेन–देन

(2) मुकदमें एवं झगड़े (अर्थ, कार्य, व्यवहार, पद)

(3) लेन–देन में प्रविष्ट होने से सम्बन्धित न्याय (कानूनी) सामथ्य

(4) किसी विषय को तय करने का साधन

इस प्रकार की चर्चा अशोक के अभिलेख (दिल्ली–तोपरा स्तम्भ के प्रथम अभिलेख में) 'वियोहाल समता' (व्यवहार समता) एवं खारबेल के हाथी गुम्फा शिलालेख में 'व्यवहार–विधि' शब्द आये हैं। महावग्ग एवं चुल्लवग्ग में वोहरिकमहामात शब्द आया है। इसी तरह मध्यकाल के निबन्धों में कानून एवं कानून–विधि (लॉ एण्ड प्रोसीड्योर) कभी–कभी एक ही ग्रन्थ में लिखित है। जैसे– वदराजकृत व्यवहार निर्णय और अन्य पुस्तक व्यवहारमयूख में। जीमूतवाहन का व्यवहार मातृका एवं रघुनन्दन कृत व्यवहारतत्व में न्याय व्यवहार का वर्णन मिलता है। प्राचीन काल में 18 प्रकार के व्यवहार पदों का वर्णन किया गया है। स्वयं मनुष्य के झगड़ों को 18 प्रकार से बांटा गया है। मनु ने लिखा है कि यह कोई आदर्श संख्या नहीं है। कौटिल्य ने जनता की दुष्ट जनों से रक्षा समाहर्ता द्वारा करने की व्याख्या दी है क्योंकि कुछ लोग गुप्त रीति से लोगों को तंग कर सकते हैं। समाहर्ता अपने गुप्तचरों द्वारा ऐसे लोगों का पता लगाता रहता है। वेश परिवर्तित कर गुप्तचर लोग ग्रामों के राजकर्मचारियों की सच्चाई का पता लगाते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि समाहर्ता एवं प्रदेष्टा को सभी विभागों के अध्यायों एवं उनके अधीन कर्मचारियों पर नियंत्रण रखना चाहिए।

मानवाधिकारों की रक्षा के लिए ऐसे न्यायधीशों को दण्ड दिया जाता था, जो आवेदकों या प्रतिवेदकों (प्रतिवादियों या वादियों) को धमकाकर, टेढ़ी भौंह दिखाकर चुप करा देते थे या गाली देते थे। ऐसे न्यायधीश जो प्रश्न नहीं पूॅछते थे, व्यर्थ में देरी करते थे, सुने–सुनाये मुकदमों को व्यर्थ में सुनते हैं या अपराधी को जेल से छुड़ाने के लिए या नारी से बलात्कार करने वाले अपराधी को अर्थ दण्ड देकर छोड़ देते थे, उन्हें दण्डित किया जाता है। इसीलिए कौटिल्य ने बहुत से अभियोगों की चर्चा की है– दो प्रकार के न्यायालयों का वर्णन भी मिलता है– कण्टक शोधन एवं धर्मस्थीय। धर्मस्थीय के अन्तर्गत केवल उन्हीं अभियोगों, प्रतिवेदनों आदि को रखा जो दलों के बीच झगड़ों से संबंधित थे। जिन्हें वाक्पारूष्य, दण्डपारूष्य, संग्रहण एवं स्तेय के अन्तर्गत बहुत से प्रतिवेदन रखे जाते थे– वे कण्टकशोधन के अन्तर्गत रखे जाते हैं। कण्टकशोधन वाले अभियोग राजा अथवा राजकर्मचारियों द्वारा उपस्थित किये जाते थे। वे राज्य से सम्बन्धित होने के कारण फौजदारी (क्रिमिनल) माने जाते थे।

मनु के अनुसार राजा को भलीभांति सज्जित होकर शांत रूप से न्यायालय आना पड़ता था और देवों एवं आठ दिक्पालों को प्रणाम करने के उपरान्त न्याय–सम्बन्धी कार्य करना पड़ता था। न्याय कार्य के चार स्तर होते थे– किसी व्यक्ति से सूचना प्राप्त करना, उस सूचना को व्यवहारपदों के अनुकूल किसी एक में रखना, दोनों दलों की बहसों एवं साक्षियों पर विचार करना तथा निर्णय करना। जब वादी समय पर उपस्थित होता है एवं प्रणाम करता है तो राजा या न्यायधीश पूछता है– 'क्या कार्य है? तुम्हें किस प्रकार की पीड़ा दी गई है? बिल्कुल न डरो, बोलो किसने कब और क्यों पीड़ा दी?' इस प्रकार पूछे जाने पर जो कुछ प्रत्युत्तर मिलता है उस पर न्यायधीश सभ्यों एवं ब्राह्मणों के साथ विचार करता है। जो कुछ वादी द्वारा कहा जाता है, चाहे स्नेह, क्रोध या लोभ के आवेश में आकर कहा गया हो, लिख लिया जाता था। कुछ लोगों को नहीं बुलाया जाता था– रोगी, नाबालिग, अत्यधिक वृद्ध (70 वर्षीय व्यक्ति) विपत्तिग्रस्त, धार्मिक कृत्य में संलग्न व्यक्ति, नशे में चूर, नौकर स्त्री (नवयुवती जिसका परिवार विपदाग्रस्त हो)।

ऐसा विवरण मिलता है कि वकील लोग भी पीड़ित पक्ष की पैरवी करते थे। यद्यपि स्मृतियों में भी इनका वर्णन नहीं मिलता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी दल के मुकदमें की पैरवी अवश्य करते रहे होंगे। नारद, कात्यायन, वृहस्पति द्वारा उपस्थापित विधान इतना नियमबद्ध था, कि बिना दक्ष, स्मृति पारंगत लोगों की सहमती के मुकदमें का कार्य नहीं चल सकता था। जो

व्यक्ति किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करता था, उसे झगड़े की सम्पत्ति का 1/6, 1/20, 1/40, 1/80 या 1/60 भाग मिलता था। मिलिन्दपन्हों से भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में वकील (धम्मपणिक) होते थे।

इसी तरह से स्त्री धन पर भी पहला अधिकार पुत्री का था, जिसका वर्णन हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी मिलता है। स्त्रियों की सुरक्षा एवं उनकी संरक्षण की जिम्मेंदारी समाज पर थी। लोग गलत कार्य करने से डरते थे कि कहीं उन्हें पाप न लग जांय। न्याय का उद्देश्य था– लोगों की हितों की सुरक्षा। यहाँ तक कि सभा में स्त्रियों के प्रवेश की बात की गई है।

अतः स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय समाज एक विकसित समाज था जिसमें मानव अधिकारों की संरक्षा सर्वोपरि था। व्यवहारपदों में भी मानवाधिकार की चर्चा देखने को मिलती है। वृहस्पति ने भी व्यवहार पद हेतु 10 अंगों की चर्चा की है– जिसमें राजा, राजा द्वारा नियुक्त न्यायधीश, सभ्य, स्मृति, गण (एकाउन्टेन्ट) लेखन, सोना, अग्नि, जल स्वपुरूष (सांध्य पाल) का वर्णन मिलता है। यही कारण है कि संपूर्ण न्याय 8 चरणों से होकर गुजरती थी जिसमें उद्देश्य था कि न्याय सभी वर्ग को मिल जाये और केवल दोषी ही दण्डित हो।

संदर्भ

1. अर्थववेद सूक्त 89
2. शुकनीतिसार 4/7/332–333
3. शान्तिपर्व 59–93–94 भागवत पुराण 4/14
4. आरक्षिततारं हन्तारं विलोपतारमनायकम।
   तं वै रजिकलिं हन्युः प्रजा सन्नध्य निघृर्णम्।।
   अहं वो रक्षितेयुक्त्वा यो न रक्षति भूमियः।
   सं संहत्या निहन्तव्यः श्वेव सोमांद आतुरः।।
   (अनुशासनपर्व 61/32–33)
5. महा0 शान्तिपर्व 68/1–4
6. मनु 7/144
7. कालिदास रघुवंश (14/67)
8. वृहस्पति । तत्प्रजापालंन प्रोक्तं त्रिविधि न्यायवेदभिः।
   पर चकाच्चौरभयाद् वलिनोड न्यायवर्तिनाः।।
   परनिकस्तेन भयमुपायैः क्षमयेन्नृपः।
   बल वत्परिभूतानां प्रत्यहं न्यायदर्शनैः।।
   (राजनीति प्रकाश द्वारा उद्घृत पृ0 254–255)
9. गौतम (10/7–8, 11/9–10
10. काणें पी0वी0 धर्मशास्त्र का इतिहास 700–701
11. अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारत की शासन पद्धति पृ0 101
12. जायसवाल, के0पी0,ह हिन्दू पोलिटी, पृ0 17–18
13. वहीं पृ0 9 मुखर्जी, आर0के0 हिन्दू सभ्यता पृ0 123
14. घोषाल, यू0एन0, स्टडीज इन हिन्दू कल्चर, पृ0 355
15. चौधरी, हेमचन्द्र राय, भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ0 156
16. मुखर्जी, आर0के0, एंशियन्ट इण्डियन एजूकेशन पृ0 219.
17. ऋग्वेद 10, 71.10.
18. शान्तिपर्व 69/28, मनु 8/1 , वसिष्ठ 16/1
19. उधोग पर्व 37/10, आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/7/16/17, 1/6/20/11 एवं 16
20. गौतम 10/48, वसिष्ठ 16/8 शंखलिखित गौतम 10/19
21. शंखलिखित गौतम 10/19
22. महावग्ग 1/40/3
23. चुल्लवग्ग 6/4/9
24. मनु 8/8
25. कौटिल्य 4/4
26. वहीं 4/9
27. मनु 8/8
28. नारद 1/36
29. नारद 2/18
30. शुक्रनीतिसार 4/5/ 114–117